वह बेचारा

जैनेन्द्र कुमार

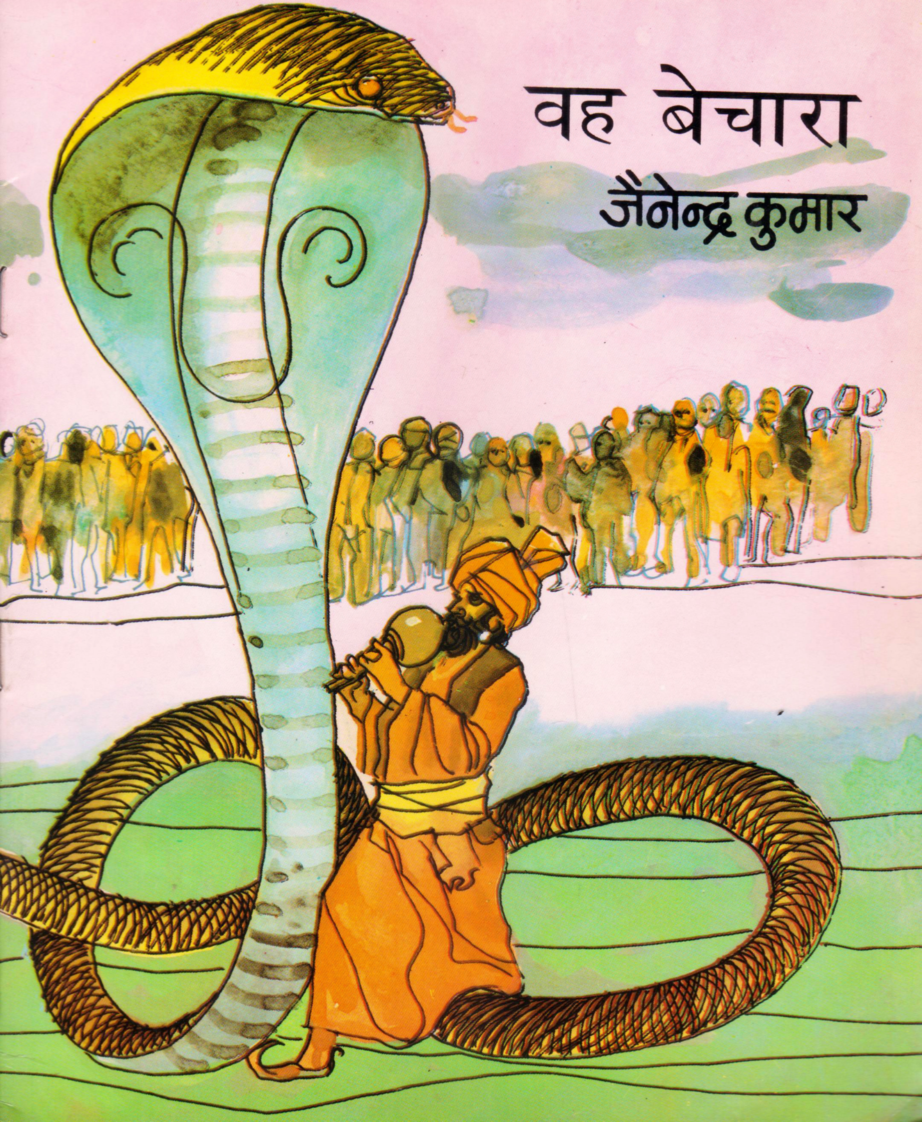

वह बेचारा

जैनेन्द्र कुमार

कलापक्ष
जोगराज

भारतीय ज्ञानपीठ
18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003

वह अपनी जगह अलग ही पड़ा रहता था। तब कीड़े-मकोड़ों तक को उसकी देह के साथ खेलने में संकोच न होता था।

एक रोज अचानक उस वन में एक देव -बालक खेलता हुआ आ पहुंचा। वह किलकारी मारता हुआ खुशी से जा रहा था। खुशी-ही-खुशी थी। शंका और डर उसके मन के आसपास बिलकुल भी न था। बालक इतना सुंदर था कि उसकी उपमा न थी। उसके हाथ में वंशी थी। वंशी को वह डंडे की तरह

पकड़े घुमाता जा रहा था। मालूम नहीं, वह बालक इस भंयकर वन के बीच में कहां से आकर कहां लपका जा रहा था।

बालक के मन में तो खेल की खुशी के सिवा कुछ न था। भागते-भागते उसका पांव सांप की पूंछ पर पड़ गया। इस पर सांप ने फण उठाया। बालक दो कदम भी न बढ़ पाया था कि उसे डस लिया।

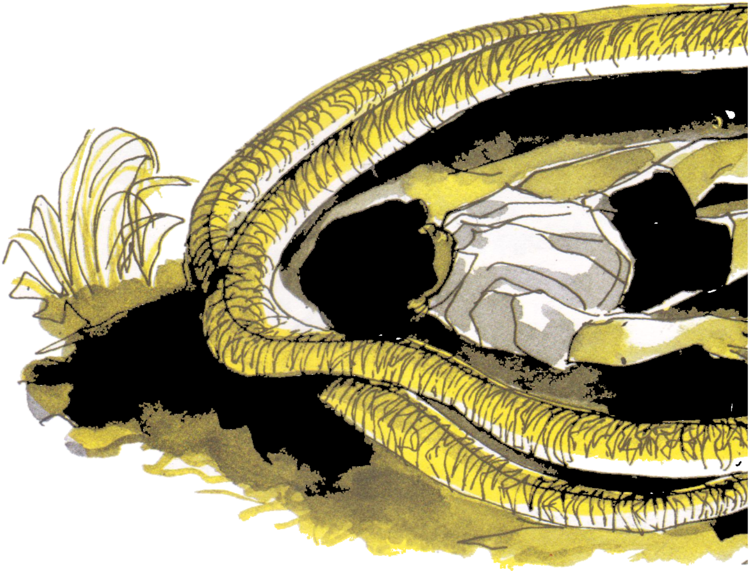

उस सांप के विष का ऐसा प्रभाव हुआ कि देखते-देखते बालक वहीं गिर गया। पलक मारते वह ठंडा भी हो गया। पीड़ा की कोई पुकार उसके मुंह से नहीं निकली। मानों हंसी-हंसी में वह वहीं लोट पड़ा हो। उस बालक का मुह ज़हर के असर से जरा भी बिगड़ा न था।

सांप ने जब गिरे हुए बालक को देखा तब वह दुखी हुआ। उस बालक की सुंदरता सांप के मन को बर्छी-सी चुभने लगी।

उस बालक के चेहरे पर अपने को काटने वाले के लिए कोई मैल नहीं था। किसी तरह की शिकायत की निशानी नहीं दीख पड़ती थी। सांप मन-ही-मन बहुत दु:खी हुआ। वह बालक को अपनी कुण्डली में घेर कर वहीं बैठ गया और उसकी देह का पहरा देने लगा।

दिन बीता, रात बीती। इसी तरह दो दिन हुए, तीन दिन हुए, चार दिन हो गये। पर सांप को अपनी सुध-बुध भी न रही और बालक के चारों ओर कुण्डली मारे पड़ा रहा। आखिर बालक का शरीर बिगड़ने लगा। अब सांप समझा कि बालक की आत्मा शरीर में नहीं है। फिर सांप वहां से चल दिया। तब उसने बड़े दु:खी भाव से भगवान को पुकारा ।

"ऐ मेरे परमात्मा ! मैं क्या करूं ? क्रोध मुझे आ जाता है, पर मैं किसी का बुरा करना नहीं चाहता। तुमने मुझ में

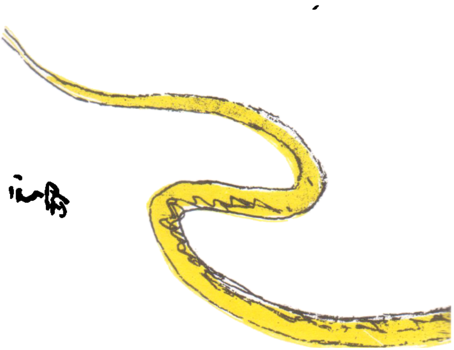

यह क्या ज़हर रख दिया है, कि मैं जरा किसी को मुंह से छूता हूं कि दूसरे की जान चली जाती है। क्या मैं इस देवता के समान बालक की बुराई तनिक भी सह सकता हूं ? मेरे परमात्मा! अपना यह ज़हर तू मुझमें से ले ले। हाय ! यह मेरे बस में क्यों नहीं है कि यदि मैं क्रोध से नहीं बच सकता, तो दूसरे की जान लेने से तो बचूं। किन्तु तूने तो मेरे मुंह में ही महाकाल बैठा दिया है। तू यह ज़हर मुझमें से निकाल ले।''

अगले दिन परमात्मा का भेजा हुआ एक संपेरा वहां आ निकला। उसके हाथ में झोली थी। वह जंगल में आया और बैठ कर बीन बजाने लगा। सांप बीन की बैन में बंधा हुआ संपेरे के सामने पहुचा। वह फण फैलाकर मोहित-सा वहां खड़ा का खड़ा रह गया । जैसे-जैसे संपेरा बीन बजाता गया, वैसे-वैसे सांप भी फण हिला-हिलाकर मस्त होता गया। इसी भांति उसके फण के आगे बीन बजती रही। सांप अपनी चेतना खोकर

आभारी-सा अपने को संपेरे के हाथ में देता गया। संपेरे ने प्रेम-भाव से धीरे-धीरे उसे पूरी तरह काबू में कर लिया।

संपेरे ने जब उसके ज़हर के दांत उसके मुंह में से खींचकर निकाले, तब वह सांप बेहोश हो रहा था। उस पीड़ा में भी जब तक सांप एकदम बेहोश नहीं हो गया, तब तक वह संपेरे का आभारी ही बना रहा। इसके लिए मानो वह उसका आभार मान रहा था कि पीड़ा देकर यह आदमी उसमें से उसके ज़हर को निकाल रहा था। आखिर बेहोश सांप को झोली में डालकर संपेरा नगर की तरफ चल पड़ा।

मूर्छा से जागने पर सांप ने देखा कि उसके चारों ओर अंधेरा है। उसने टटोलकर यह भी देखा कि चारों ओर से बंद है। कहीं भी रास्ता नहीं है। शरीर के जोर से उसने कोशिश भी की कि उसे किसी तरफ रास्ता खुलकर मिले। पर चारों ओर टकराकर वह लौटा और अब उसे मालूम हो गया कि रास्ता तो रूका ही है। ऊपर नीला आसमान नहीं है। वही काला अंधेरा है, जो उसके पीछे है। उसे चारों तरफ से जो वस्तु घेरे हुए है, उसे वह जानता नहीं। वह तो मजबूत है और ठोस भी। उसे लगा कि उस चीज में जान नहीं है। उससे उसका हेल-मेल न होगा।

झोली लेकर संपेरा नगर में अपनी रोजी के लिए निकला।
वहां वह बीन बजाकर सांप का खेल दिखायेगा और उससे दाना,

पैसा और रोटी पा लेगा। बच्चे सांप का खेल देखेंगे और अपनी मां-चाची से रोटी लाकर संपेरे को दे देंगे। सांप को देखकर उन्हें बड़ा चाव होगा। सांप का डर भी होगा, पर संपेरे के रहते वे ज्यादा डरेंगे नहीं। कंकड़ी फेंककर उस सांप से वह छेड़-छाड़ भी कर लेंगे। उसे वे छू भी क्यों न लेंगे। सांप का फण बालकों को बड़ा विचित्र मालूम होगा।

खेल शुरू हुआ और पिटारी का ढक्कन खुला। सांप को अपने माथे के ऊपर प्रकाश लगा। तब वह बड़ी इच्छा के साथ ऊपर की ओर फण उठा कर लपका। पर उसने देखा कि उसके सामने तो उसका उपकारक संपेरा ही बीन बजा रहा है। तब तो वह सांप फण हिला-हिला कर अपना एहसान और मोह जतलाने लगा। वह झूम-झूम कर बीन के बैन सुनता हुआ अपने उपकारी के सामने फण खोलकर खड़ा रहा।

इस हालत में संपेरे ने सांप को टोकरी में से निकालकर बाहर धरती पर छोड़ दिया। सांप ने देखा कि लोग उसे घेरे खड़े हैं। उनमें बालक भी हैं। यह बात उसकी समझ में नहीं आयी कि वे सब उससे क्या चाहते हैं। वह तो स्वयं कटखना हिंसक जीव है। तब यह सब लोग उसके इतने पास से घेरे हुए निडर भाव से किस आशा में खड़े हैं?

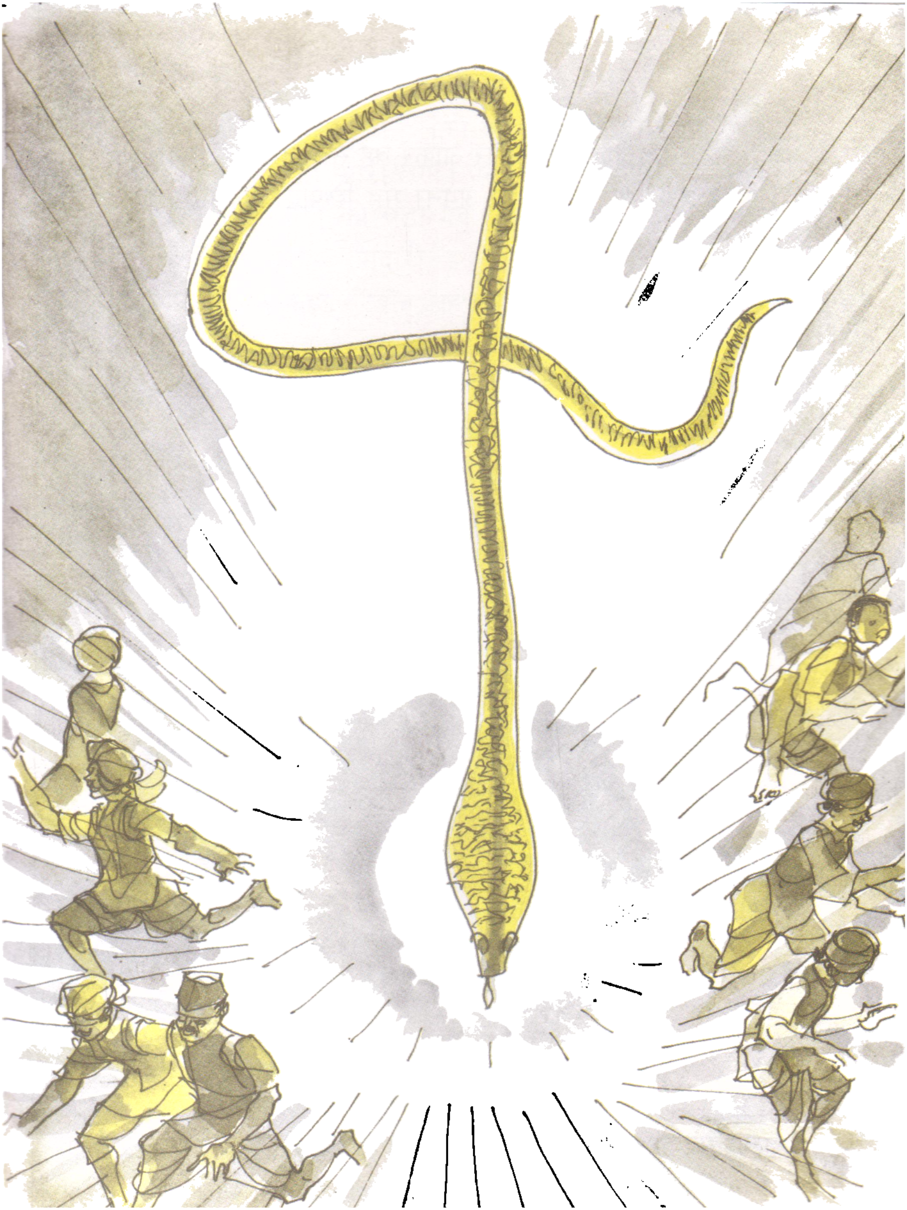

अचानक बाहर धरती पर आकर वह संकोच से घिर गया। लिपटा हुआ-सा, देह में ही अपना मुंह छिपाये वह लोगों के

घेरे के बीच में पड़ा रहा। लोगों को सांप की चमकदार और चिटी हुई देह बड़ी प्यारी लगी। ऐसा सामने मुंह दुबकाये पड़ा देखकर उन लोगों को बड़ा गर्व मालूम हुआ।

एक ने कहा– "मदारी, इसे उठाओ।"

मदारी ने कहा– "बाबू, यह नाग अभी नया है। सकुचाता है।"

एक बच्चे ने कहा– "इसे चलाकर दिखाओ, मदारी।"

मदारी ने कहा– "अच्छा बाबू।"

यह कह कर मदारी ने उस सांप की पूंछ में अपने हाथ से एक जोर की चोट मारी।

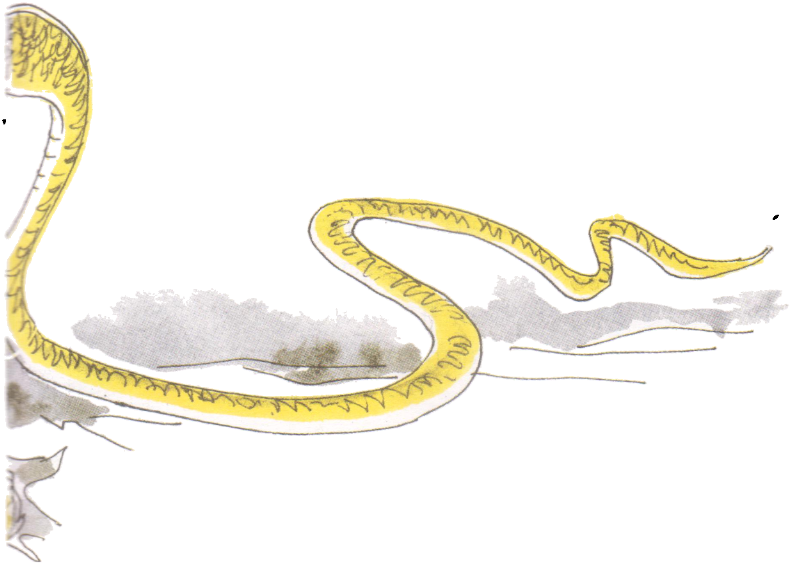

सांप बैठा-बैठा अपनी अधझपी आंखों से लोगों के प्रति प्रेम और करुणा की बातें सोच रहा था। दो टांगों पर पेड़ की तरह खड़े-ही-खड़े चलने वाले आदमी नाम के जंतु उसने अपने वन में ज्यादा नहीं देंखे थे। इन्हें देखकर शुरू में तो उसे बहुत भय मालूम हुआ। पर उसने जाना कि ये कमजोर प्राणी हैं। वे तो उसका एक डंक भी नहीं सह सकते। तब उसे डर की जगह करुणा होने लगी। उन विचित्र और कमजोर आदमियों का झुंड-का-झुंड अपने चारों ओर पाकर पहले तो उसे डर लगा। आदमियों का यह विचार उसे अच्छा न लगा कि उन्हें इतनी हैरानी है। फिर भी उसे उनका प्रेम अच्छा ही लगा। किंतु होते-होते इतने आदमियों की आंखों के सामने सकुचाये पड़े रहना भी उसे भारी लगने लगा। वह इन पराये आदमियों के बीच में से भागकर अपने वन में ही चला जाना चाहता था। पर उसके लिए रास्ता कहां था ?

उसी समय पूंछ में चोट खाकर उसने फण को थोड़ा उठाया। वह अपने फण को चौड़ा करता ही चला गया। उसने तुरन्त चोट क़रने वाले की ओर देखा। किन्तु संपेरा मुंह में बीन लेकर बजा रहा था। सांप क्रोध में फण फैलाये खड़ा रहा। उस फैले हुए फण को डरावनी सुंदरता पर लोगों की आंखे जमीं रह गई। उन्हें लगा कि इस समय तो इस सुंदरता में आनंद

ही है, डर नहीं। सांप ने अपने उठे हुए फण को चारों ओर घुमाकर सब कुछ देखा। उसने देखा कि उसके अपने ग्न में गुस्सा नहीं है। फिर भी इन सब आदमियों के चेहरों पर चाव ही दिख रहा है। उसे देख बालक तब भी घबराये हुए नहीं हैं। सांप ने क्रोध-भरी आंखों से देखा। उसने गुस्से की फुनकार छोड़ी। उसकी लपलपाती जीभ बाहर निकली, मानों काली बिजली की रेख हों। इस सबसे चाहे कोई डरा भी हो, पर लोगों के चाव में और उत्सुकता बढ़ गयी। वे और भी अधिक संतोष तथा आनंद से सांप के करतब देखते रहे।

सांप के फण में जाने कितनी शक्ति थी। वह फैलता ही गया। उस नाग का फण पारसनाथ (जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर) की मूर्ति के शीश पर छाये नाग-फण की तरह छा गया। उसका फण उठता ही गया। सांप के बाकी शरीर में भी मानों चेतना लहराने लगी। बिजली के जीवित तार के समान उसका शरीर किसी ज्वाला से भरा दीखने लगा। सांप ने

चिन्गारी-सी आंखों से चारों ओर देखा।

लेकिन लोगों का चाव और बढ़कर ही रह गया। डर तो उनके पास फटका भी नहीं।

तब सांप ने अपना फण जोर से धरती पर दे मारा। उससे आस-पास की मिट्टी उड़ गई और फण की नोक के नीचे गड्ढा पड़ गया।

उस समय संपेरे ने अपने स्थान से मानों सांप को पुचकारा और कहा– "बस बेटा, बस।" उसने अपना हाथ बढ़ाकर सांप की देह पर फेरना चाहा। सांप जोश से उसके हाथ की ओर झपटा।

संपेरे ने अपने होंठों को बढ़ाकर पुचकारने की आवाज़ निकाली। मानो वह उसे चूमना चाहता है।

सांप अपने असफल गुस्से को भीतर लेकर जल उठा। उसे अब लगा, "लोग मेरे डर को बेकार करने के बाद अब मेरे तिरस्कार का मजा ले रहे हैं। जो मेरा तेज था वह इन आदमियों के लिए केवल सुंदरता है। मेरा क्रोध उनका दिल-बहलाव है।

मेरा अपमान उनकी खुशी है।''

संपेरे ने उसके शरीर पर धीमे-धीमे हाथ फेरकर कहा– "आ बेटा, बस। बस, मेरे बेटे।''

सांप ने जोर से अपने दांत संपेरे के हाथ में मारे। संपेरा अपने हाथ में से निकलता हुआ खून देखकर हंसा। उसने उसे पोंछ दिया। फिर शांत भाव से पुचकारते हुए कहा– "गुस्सा नहीं करते, बेटे। शाबास, शाबास !''

इस पर सांप चुपचाप कुंडली मारकर धरती पर बैठ गया। उसकी कमजोरी उसे काटने लगी। अपने लांछित घमंड को अपने ही भीतर चूसता रहा। वह हारा हुआ लोगों के बीच में पूंछ में मुंह दुबकाये पडा रह गया।

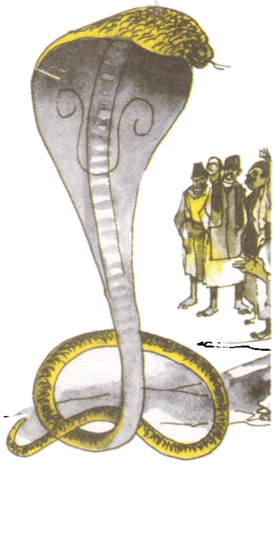

एक आदमी ने कहा– "संपेरे, तुमने इसके ज़हर के दांत निकाल लिए मालूम होते हैं।"

संपेरे ने कहा– "नहीं बाबू, आप इसका भरोसा मत करना। हम लोगों के पास तो बूटियां रहती हैं।" यह कहकर उसने कटी हुई जगह पर बूटी-सी कुछ निकाल कर घिस ली।

दूसरे आदमी ने कहा– "क्या यह बड़ा तेज सांप है ?"

संपेरे ने कहा– "बाबू, इसके काटे का इलाज दुनिया में नहीं है। बड़ा जहरीला सांप है। बाबू !" सांप पूंछ में मुंह दुबकाये मानो एक ओर से अपने को निगल ही जाता हुआ पड़ा था।

तीसरे आदमी ने फरमायश की– "मदारी, यह तो चुप हो गया। इसको फिर उठाओ।"

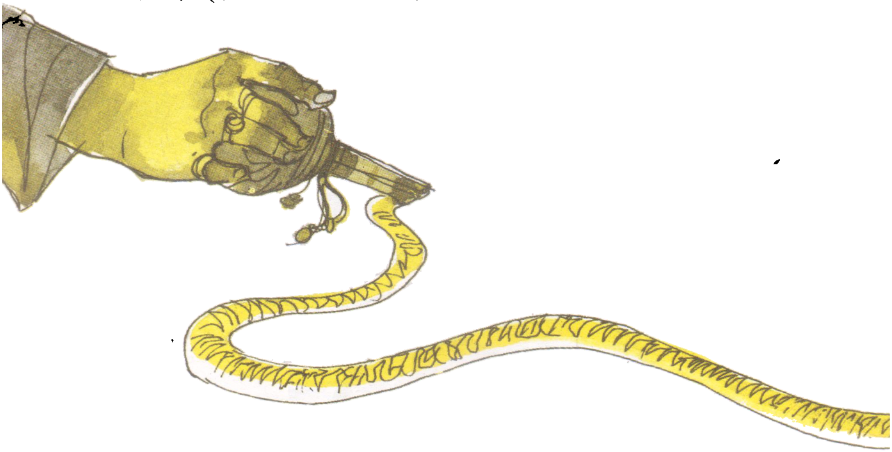

मदारी ने अपनी बीन की नोक से सांप की पूंछ में कई टहोके लगाये। सांप तैश में कांप गया। पर वह चुप ही पड़ा रहा, उठा नहीं।

संपेरे ने फिर चोट देकर कहा– "उठ बेटा।" सांप को ऐसा गुस्सा आया कि वह अपने को ही काट डाले।

संपेरे ने फिर उससे फण पर चोट मारकर पुचकारकर कहा– "उठो, बेटा।"

और वह बेटा, आखिर कब तक न उठता। जब सहन से बाहर हो गया, तब वह उठा। उठकर वैसे ही फण फैलाया। वैसे ही फण को चारों ओर घुमाया। वैसे ही फुंकार मारी। वैसे ही जीभ निकाली। वैसे ही शरीर को ताना। क्रोध की पूरी नकल उसने की, क्योंकि उसने जाना कि तमाशाई यही चाहते हैं और यही करके उसकी हटी है।

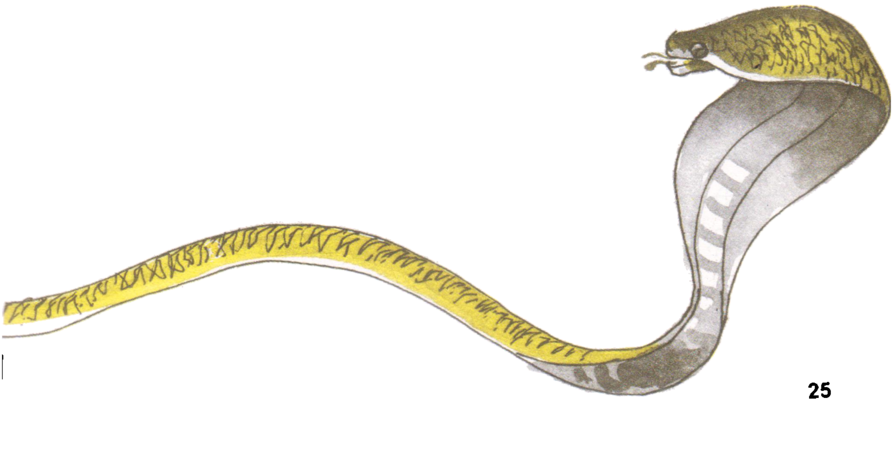

लोगों को बड़ा मज़ा आया। उन पर सांप का बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने माना कि सांप निस्संदेह बड़ा जहरीला है। उनको ऐसा आनंद हुआ जैसे किसी ऐसे महापुरूष को उन्होंने देखा हो, जिसकी बड़ाई का असर उन्होंने अपने ऊपर न होने दिया हो। इसीलिए उसका बड़प्पन उन्होंने खुशी से सराहा।

सांप ने सभी कुछ कर दिया और फिर वह कुण्डली मारकर पूंछ में मुंह डालकर वैसे ही बैठा रहा। तभी एक आदमी ने उसकी चाल देखने की इच्छा जाहिर की। उसने सोचा कि देखें तो सही कि बड़े और अनोखे समय सांप की चाल में क्या आन-बान रहती है।

संपेरे ने कहा– "अच्छा बाबू। "और बीन की नोक उसके शरीर पर ठोक कर संपेरे ने कहा– "जरा चाल दिखा मेरे राजा बेटे। बाबू को खुश कर दे। तुझे बड़ा इनाम मिलेगा।"

बड़े इनाम को चाहने की बात उस कम समझ सांप की अक्ल में शायद नहीं आई। चोटें सहता हुआ भी वह मानों वहां बेजान चीज की तरह ही पड़ा रहा। कुछ देर बाद बाबू को खुश करने का लाभ उसे जरूर मालूम हो गया। तब उसने अपनी कुण्डली को खोला और सरकना शुरू किया। संपेरे ने फण के पास बीन का टहोका देकर कहा– "सलाम कर बाबूओं

को। सलाम कर !'' सांप ने फण उठा लिया।

इसी तरह कुछ दूर चल-चला कर सांप वैसे ही मरोड़ी मारकर आ बैठने लगा। संपेरे ने उसे बहुत शाबासी देते हुए दोनों हाथों में उठा लिया। उसे लेकर घेरे में लोगों के सामने घूमते हुए कहने लगा–

"दाता सबका भला करे !''

❑❑❑

ISBN 978-93-263-5181-2 First Jnanpith Edition : 2013 Rs. 30.00